विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/86

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५३० • वैशाख पूर्णिमा [शक] • दि. २३–५–१९८६ • अंक १२

सम्यक् सम्बोधि

जब कोई व्यक्ति सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर लेता है तो वह अपने नाम पर अथवा किसी अन्य के नाम पर कोई संप्रदाय स्थापित नहीं करता, कर ही नहीं सकता. सम्यक् सम्बुद्ध सदा धर्म संस्थापित करता है, संप्रदाय नहीं.

संप्रदाय-संस्थापन के अनेक कारण होते हैं, उसमें से एक यह है – संप्रदाय-संस्थापक यह मानता है कि जो इस संप्रदाय में दीक्षित हो जायेगा उस पर किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की महती कृपा हो जायेगी और वह निश्चय ही तार दिया जायेगा. लेकिन जब कोई व्यक्ति सम्यक् सम्बुद्ध बनता है तो यह बखूबी जान लेता है कि वह स्वयं अपने कठिन परिश्रम से ही विमुक्त हुआ है. स्वयं बुद्ध हुआ इसीलिए सम्बुद्ध कहलाया है. वह जान लेता है कि मुक्ति किसी की कृपा की देन नहीं होती, स्वयं परिश्रम द्वारा प्राप्त की जाती है. और वह यह भी बखूबी जान लेता है कि ऐसा कोई तारक जगदीश्वर है ही नहीं जो कि किसी संप्रदाय-विशेष का पक्षपाती हो. कोई भी सम्यक् सम्बुद्ध इस मिथ्या मान्यता के आधार पर संप्रदाय कैसे स्थापित करेगा भला ?

संप्रदाय ऐसे व्यक्ति द्वारा भी स्थापित किया जाता है जिसके मन में यह लालसा हो कि मेरी मृत्यु के बाद भी मेरी याद लोगोंके मन में बनी रहे. मेरे संप्रदाय में दीक्षित हुए लोग सदियों तक मेरे गुणगान गाते रहें. मेरे नाम पर देवालय, मंदिर, चैत्य आदि स्थापित हों. उनमें मेरी मूर्तियाँ स्थापित हों. लोग वहाँ श्रद्धा-भक्ति से पूजा-पाठ करने आएँ. मनौतियाँ मनाने आएँ और जिन जिन की मनौतियाँ फलीभूत हो जाँय वे कृतज्ञता प्रगट करने आएँ; उत्सव, उल्लास, जलसे मनाने आएँ. यों संसार में मेरा नाम अमर हो जाय. जिस व्यक्ति के मन में ऐसी लालसा किंचित मात्र भी रह गयी, वह वीतराग कैसे हुआ ? अर्हंत कैसे हुआ ? सम्यक् सम्बुद्ध कैसे हुआ ? अतः कोई भी सम्यक सम्बुद्ध इस कारण भी संप्रदाय स्थापित नहीं करेगा.

जिसने सम्बोधि प्राप्त कर ली वह इस बात को बखूबी जान गया कि कोई व्यक्ति चाहे जिस संप्रदाय से बंधा हो, चाहे जिस मंदिर, देवालय, चैत्य में जाकर चाहे जिस मूर्ति व चित्र आदि को पूजता हो, जब तक उसके मन में तृष्णा जागती रहती है, तब तक दुःख-लिप्त ही रहेगा. और यदि तृष्णा को क्षीण कर लेगा, राग-द्वेष की जड़ें निकाल लेगा तो चाहे जिस संप्रदाय का व्यक्ति हो, दुःखमुक्त हो ही जायेगा. प्रकृति का अटूट नियम है. इस नियम को याने विश्वव्यापी धर्म को जानकर ही तो स्वयं तृष्णा-विमुक्त हुआ, सम्बुद्ध हुआ. अतः लोगों को भी दुःख-विमुक्त होनेका यही पाठ पढ़ाता है, संप्रदाय में दीक्षित होने का नहीं.

किन्हीं कर्मकांडों के आधार पर भी संप्रदाय स्थापित हो जाता है. सम्यक् सम्बुद्ध होगा तो कर्मकांड को जरा भी महत्व नहीं देगा. क्योंकि कर्मकांडों से मन विकार-विमुक्त नहीं हो सकता, न ही दुःख-विमुक्त.

बाहरी वेशभूषा और दिखावे के आधार पर भी संप्रदाय स्थापित हो जाता है. पर सम्यक् सम्बुद्ध है तो खूब समझेगा कि इन बाह्याडंबरों से शुद्ध धर्म का कोई संबंध नहीं होता. न इनसे चित्त शुद्ध होता है और न दुःख-विमुक्ति उपलब्ध होती है.

किसी दार्शनिक मान्यता को स्थापित कर उसके आधार पर भी संप्रदाय स्थापित कर दिया जाता है. परन्तु सम्यक् सम्बुद्ध हो तो जान लेगा कि दार्शनिक मान्यता कितनी ही सही क्यों न हो, केवल मानने मात्र से चित्त विशुद्ध नहीं हो जाता. उसे सम्यक्-रूपेण पूर्णतया जान लेने से, उसका साक्षात्कार कर लेने से चित्त विकार-विमुक्त होता है और फलतः दुःख-विमुक्त होता है. साक्षात्कार कर लेगा तो सांप्रदायिकता को समीप नहीं आने देगा. अतः

धम्म वाणी

वेला च संवरं सीलं चित्तस्स अभिभासनं ।
तित्थञ्च सब्ब बुद्धानं तस्मा सीलं विसोधये ॥

थेरगाथा – ६१६.

शील-सदाचार चित्त का संयम-संवर है (सम्यक् समाधि है)
शील-सदाचार चित्त का प्रज्ञा-प्रकाश है,
और सभी बुद्धों का तीर्थ (सम्प्रदाय) है,
इसलिए शील-सदाचार को विशुद्ध करें.

दार्शनिक सिद्धान्त की मात्र मान्यताओं के आधार पर सम्यक् सम्बुद्ध कोई संप्रदाय संस्थापित कैसे करेगा भला ?

चाहे जिस कारण से हो गया हो, संप्रदाय स्थापित हो जाना बड़ा खतरनाक साबित होता है. हर संप्रदाय का व्यक्ति अपने संप्रदाय के प्रति इतना आसक्त हो जाता है कि संप्रदाय के गुमान में स्वयं धर्म धारण करना ही भूल जाता है. धर्म उसके लिए गौण हो जाता है, संप्रदाय प्रमुख. शील-सदाचार का जीवन जिए या नहीं, मन को वश में करने का कोई उचित अभ्यास करे या न करे, मन को विकार-विहीन करने के लिए कोई उचित उद्यम करे या न करे, फिर भी किसी संप्रदाय में जन्मने के कारण अथवा दीक्षित हो जाने के कारण एक मिथ्या दंभ सिर पर सवार कर लेता है और अपने आपको धार्मिक व्यक्ति मानने के भ्रम में सारा जीवन बिता देता है. इतना ही नहीं सांप्रदायिकता का भावावेश कभी कभी इतना तीव्र हो उठता है कि ऐसा व्यक्ति धर्म के नाम पर ही धर्म-विरोधी काम करने लगता है, समाज की सुख-शांति को नष्ट करने लगता है.

जिस प्रकार जातिवाद का विषधर नाग समाज में विषमता फैलाकर द्वेष, दमन. दौर्मनस्यता का जहर फैलाता है, उसी प्रकार संप्रदायवाद का हत्यारा दैत्य भी परस्पर द्वेष, द्राह की अग्नि धधकाकर समाज की अपरिमित हानि करता है. कोई सम्यक् सम्बुद्ध होगा तो दोनों का ही कड़ा विरोध करेगा.

कोई सम्यक् सम्बुद्ध स्वयं कोई संप्रदाय स्थापित नहीं करता. सांप्रदायिकता का विरोध ही करता है. लेकिन फिर भी कुछ समय बीत जाने के बाद उसी के नाम पर एक नहीं अनेक संप्रदाय स्थापित हो जाते हैं और सद्धर्म की हानि करते हैं. लोगों का अमंगल करते हैं. मनुष्यों का एक समूह एकत्रित होकर अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की सुरक्षा करे, औरों द्वारा अपना शोषण-दमन न होने दे, इसमें कोई दोष नहीं. परन्तु इसे धर्म का जामा पहनाकर, लोगों का भावावेश जगाकर, उन्हें गुमराह करे तो सचमुच दोषकी बात हुई.

सम्यक् सम्बुद्ध का यदि संप्रदाय है भी तो शील-सदाचार ही है. भगवान गौतमबुद्ध का एक विपश्यी साधक भिक्षु सील-स्थविर बुद्ध के मन्तव्य को भलीभांति समझकर ही यह घोषणा करता है कि " तित्थञ्च सब्बबुद्धानं तस्मा सीलं विसोधये " याने सील सदाचार ही सब बुद्धों का संप्रदाय है. अतः अपने शील को शुद्ध करना चाहिए.

जिसका शील शुद्ध होगा, समय पाकर उसकी समाधि भी शुद्ध हो जायेगी. उसकी प्रज्ञा भी शुद्ध हो जायेगी. यों धर्म शुद्ध हुआ कि बन्धनों से छुटकारा पा ही जायेगा. दुःखों से मुक्त हो ही जायेगा, कोई हो.

जहाँ धर्म को ही संप्रदाय माना जाता है वहाँ कल्याण ही कल्याण है, मंगल ही मंगल है. परन्तु जहाँ संप्रदाय को धर्म माना जाता है वहाँ अनर्थ ही अनर्थ है, अमंगल ही अमंगल है.

शील धर्म को ही संप्रदाय मानने का अर्थ हुआ कि यदि बुद्ध का कोई संप्रदाय है भी तो उसका सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो कि शीलवान है. कल तक जो शीलवान नहीं था, वह आज शीलवान हुआ तो आज ही बुद्ध के संप्रदाय में दीक्षित हो गया. इसी प्रकार जो कल तक शीलवान था वह किसी कारण से आज शील-भ्रष्ट हो गया तो आज ही संप्रदाय-च्युत हो गया. शील-विहीन व्यक्ति ऐसे धर्म-संप्रदाय में तो रह ही नहीं सकता. क्योंकि शील-धर्म का पालन ही प्रमुख है यहाँ.

लेकिन जब संप्रदाय ही धर्म बन जाता है तो धर्म धारण करे या न करे, शीलवान हो या न हो, समाधिवान हो या न हो, प्रज्ञावान हो या न हो, संप्रदाय में कायम रहेगा ही. ऐसा व्यक्ति धर्म के खूब नारे लगायेगा, जब कि स्वयं में धर्म का नामोनिशान नहीं. धर्म के नाम पर अपने जैसे अन्य संप्रदायवादियों का भावावेश जगाता रहेगा. अपनी तथा औरों की हानि करता रहेगा.

संप्रदायवादी संप्रदायवादी है, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या सिख या यहूदी या बौद्ध, कोई फर्क नहीं पड़ता, सब सम्प्रदायवादियों की एक जैसी मनोवृत्ति होती है. स्वयं धर्म धारण करते नहीं, फिर भी लोगों में भावावेश जगाते हैं. - " हमारा धर्म खतरे में है". अरे बावले आदमी ! तेरा धर्म तो उसी दिन खतरे में आ गया जिस दिन तूने स्वयं शील-सदाचार छोड़ा. मन को वश में करने और उसे निर्मल बनाने का अभ्यास छोड़ा. तेरे धर्म को खतरा स्वयं तुझसे है, किसी दूसरे से नहीं. किसी सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक बात को लेकर समाज खतरे में हो तो उसके लिए जो करणीय हो वह अवश्य करे, पर धर्म को इस दलदल में क्यों घसीटे ? परन्तु धर्म का मुखौटा पहने बिना लोगों का भावावेश कैसे जगाए ? धर्म के नाम पर जगाए हुए अंधभावावेश में भले कोई हत्या करे, चोरी करे, डकैती करे, आगजनी करे, बलात्कार करे – हर प्रकार के अनर्थ अन्याय करे, सभी स्वीकृत हैं. क्योंकि घुट्टी यही दी गयी कि जो कुछ कर रहा है, अपने धर्म को, मजहब को बचाने के लिए कर रहा है. धर्म-युद्ध कर रहा है और धर्म-युद्ध में सब कुछ जायज है, नाजायज कुछ नहीं. यों बड़ी सरलता से दुराचार को धर्म का बिल्ला लग गया, सर्टीफिकेट मिल गया, तमगा मिल गया. इसमें धर्म डूबा कि धर्म बचा ?

दो भाई, एक दूसरे के खून के प्यासे. दोनों में अंतर केवल इतना ही कि एक ने केश बढ़ा रखे हैं और दूसरे ने कतरा लिये अथवा एक ने चोटी बढ़ा रखी है, दूसरे ने दाढ़ी. दोनों के ही धर्म-ग्रन्थ ऊँचे शब्दों में प्रेम का, शील-सदाचार का, शांति और सहिष्णुता का, निर्मलता और निरहंकारता का पाठ पढ़ाते हैं. परंतु ये सद्गुण तो अपने जीवन में किंचितमात्र भी धारण करे नहीं, पर " हमारा धर्म खतरे में है " इस बात का नारा लगाकर धर्म के ही विपरीत काम करे. ऐसे लोग स्वयं धर्म को डुबोते हैं, बचाते नहीं. परंतु जहरीला संप्रदायवाद का नशा धर्म की सचाई का चिंतन ही छीन लेता है.

कोई भी धर्म-संस्थापक हो. यदि सचमुच धर्म-संस्थापक है तो कभी संप्रदाय नहीं बांधेगा. लोग बांधने लगें तो यही कहेगा

कि, "धर्म ही, याने शील ही तीर्थ है, सदाचार ही संप्रदाय है -- तस्मा सीलं विसोधये".

जब जब कोई कहे --- "हमारा धर्म खतरे में है" तो उस धर्म-संप्रदाय का हर व्यक्ति कमर कसकर इसी काम में लग जाय "तस्मा सीलं विसोधये", हर व्यक्ति अपने अपने सील-सदाचार का विशोधन करे. उसमें कहीं मैल आने न दे तो न अपनी हानि करेगा और न औरों की.

धर्म ही संप्रदाय है यह होश बना रहेगा तो संप्रदाय धर्म की हानि नहीं कर सकेगा. संप्रदाय के विष से छुटकारा पाने का यही एक मात्र तरीका है. ठीक वैसे ही जैसे कि जातिवाद के विष से छुटकारा पाने के लिए एक ही तरीका कारगर हो सकता है और वह यह कि ऊँच-नीच का धर्म के अतिरिक्त और कोई माप-दंड है ही नहीं. जो व्यक्ति जितना धर्मिष्ठ, वह उतना ही ऊँचा; जो जितना धर्म-विहीन उतना ही नीचा. सबको पूरी पूरी छूट. नीचे से नीचा व्यक्ति सत्प्रयत्नों द्वारा इसी जन्म में ऊँचे से ऊँचा व्यक्ति बन सकता है, किसी कुल का हो, किसी वर्ण का हो, किसी समाज में जन्मा हो, मनुष्य मनुष्य है.

जो सम्पूर्ण सदाचारी है, इंद्रियाँ संयत हैं जिसकी, चित्त निर्मल है जिसका, वही ब्राह्मण है, अन्य नहीं. इस अवस्था पर पहुँचना किसी एक व्यक्ति का एकाधिकार नहीं. यह अवस्था बपौती से नहीं प्राप्त होती. हर व्यक्ति को स्वयं परिश्रम करके प्राप्त करनी होती है. जो परिश्रम करे सो पाए. जन्म से इसका कोई संबंध नहीं. किसी भी कुल में जन्मा हुआ व्यक्ति ब्राह्मण भी हो सकता है और शूद्र भी. कोई भी व्यक्ति एक समय ब्राह्मण हो सकता है और दूसरे समय शूद्र भी. एक समय शूद्र हो सकता है और दूसरे समय ब्राह्मण भी.

जिस दिन धर्म और संप्रदाय की सही व्याख्या, ब्राह्मण शूद्र की सही व्याख्या समाज के हर प्राणी तक पहुँच जायेगी और उनके द्वारा स्वीकृत हो जायेगी, उस दिन धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा. काम कठिन है पर असंभव नहीं. भले धीरे धीरे ही सही, पर लोगों में यह बात फैलनी चाहिए. हर व्यक्ति का चिंतन इस दिशा में होना चाहिए कि मैं अपने नाम के साथ चाहे जैसा लेबल लगाए फिरूं, पर क्या मैं सचमुच धर्मिष्ठ हूँ या नहीं? नहीं हूँ तो धर्मिष्ठ बनने के लिए क्या प्रयत्न कर रहा हू? बिना प्रयास, परिश्रम कुछ भी प्राप्त होनेवाला नहीं है.

कोई व्यक्ति सम्बुद्ध बनता है तो बड़ा परिश्रम करके ही बनता है. अतः जीवनभर यही सिखाता है कि धर्मिष्ठ बनने के लिए निरालस श्रम करते रहो. चाहे जिस जाति या संप्रदाय या देश-काल का व्यक्ति हो, धर्म तो श्रम से ही साध्य है, अन्यथा नहीं. बुद्धत्व प्राप्ति से लेकर जीवन के अंतिम सांस तक भी एक यही देशना .. . .

"अप्पमादेन सम्पादेथ"

सत्यधर्म का संपादन अप्रमाद पूर्वक श्रम से ही करना होगा.

आओ साधको! इस पावन सम्बोधि दिवस पर भगवान के इन अंतिम शब्दों का श्रमपूर्वक पालन करें और सम्प्रदायवाद तथा जातिवाद की जजीरों को तोड़कर शुद्ध धर्म धारण करते हुए अपना तथा समाज का हित-सुख साध लें, मंगल-कल्याण साध लें.

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

साधकों के उद्‌गार

संत सेवक समुद्यम परिषद के संयोजक श्री मानवमुनि इंदौर से लिखते हैं, "... देशकी वर्तमान अशांत परिस्थिति में जहां चारों तरफ दूषित वातावरण है, मन अशांत हैं, आए दिन हिंसाका तांडव नृत्य हो रहा है, मानव मानव का संहार कर रहा है, जीवन में अनुशासन नहीं, लोग धन-तृष्णाकी दौड़में भाग रहे हैं; यहां तक कि भोजन भी समय पर नहीं कर पाते, परिवारमें प्रेम नहीं, मर्यादा नहीं, नैतिक जीवन नहीं, सदाचार का दर्शन नहीं, वहां धर्म की आराधना कहा हैं?

आज देश में अत्यावश्यक हैं कि ध्यान-साधना की ओर मनुष्यकी रुचि पैदा हो, तभी व्यक्ति के जीवन में शांति होगी. आहार-विहार में सुधार होगा तो ही मनोवृत्ति में, विचार-चिंतनमें भी परिवर्तन होगा. विपश्यना ध्यान के साधकोंका परम कर्तव्य है कि वे जहां भी रहते हों वहां स्वयं तो साधना में रत रहें ही, किंतु अन्य साथी मित्रों में रुचि जाग्रत करें. अपने जीवन व्यवहार द्वारा लोगोंमें ध्यानकी ओर जिज्ञासा बढ़ावें. यदि वर्तमान परिस्थितिमें शांति चाहते हैं तो जीवन में ध्यानका होना अत्यावश्यक है.

आपका विचार जन जनमें पहुँचानेका काम साधक का है. प्रसन्नता है ऐसा हो भी रहा है. इससे आध्यात्मकी शक्ति बनेगी और विश्व में शांति हो सकेगी. .....

द्वितीयाका चांद जिस प्रकार से बढ़ता है और पूर्णिमा का चांद मानवको शीतलता देता है, शांति देता है उसी प्रकार विपश्यना साधनाका क्रम है. साधक चिंतन करता है कि मुझे विपश्यना करते हुए वर्ष व्यतीत हो गया पर संवेदना शरीरकी बनी रही, यह ध्यानकी गहराई में जा नहीं सके. ध्यान-साधना जीवन के साथ जुड़नी चाहिए, बाह्य प्रपंचोंसे मुक्त होना चाहिए. मेरा तो चिंतन है कि यदि भारतके सभी राजनेता व धर्माचार्य और समाज-सेवक यदि नूतन वर्ष में मनका संकल्प करते कि जीवन में एक घंटा कम से कम मौन रहकर ध्यान-साधनामें आत्मचिंतन करूंगा तो विश्व की समस्याओंका समाधान खोजना और शांति स्थापित करना आसान हो जाय. किन्तु (इसके लिए) मोह छोड़ना होगा, राग-द्वेष छोड़ना होगा, समताभाव जाग्रत करना होगा. प्राणी मात्रके साथ मैत्रीभाव होगा तो आपकी (यह) भावना विपश्यना ध्यान द्वारा ही साकार होगी. "...जनम जनम के बंधन टूटें, हृदकी गांठें टूटें, मानस निर्मल होयरे..." मन मानस निर्मल हो तो विश्वकी समस्याओंका समाधान स्वयं ही खोज लेगा. स्वयं के जीवनमें शांति होगी तो ही विश्वको शांतिकी राह दिखा सकेगा. तो वह मार्ग है विपश्यना ध्यान साधनाका."

● ● ●

कोल्हापुरके श्री राजाराम बेरी लिखते हैं, "मैं साधनाका जितना अधिक अभ्यास करता हूँ उतना अधिक विश्वास दृढ़ होते जा रहा है कि सचमुच भगवान बुद्ध ने विपश्यना के रूपमें मानव जातिको एक अनुपम उपहार दिया है. स्वयं अपने द्वारा आत्म साक्षात्कार कर सकने की एक सर्वोत्तम साधना विधि है जिससे कि बाहरी लोकीय क्षेत्रके बारेमें भी समुचित ज्ञान हो जाता है और लोकोत्तर क्षेत्रके बारेमें भी. मुझे प्रसन्नता है कि इसका प्रसार विश्व भर में हो रहा है."

श्रीलंकाकी ५९ वर्षीय श्रीमती आइरिन डिसिल्वा लिखती है, "विपश्यना आरंभ किए अभी एक ही वर्ष हुआ है लेकिन मैंने कभी अपना दैनिक अभ्यास नहीं छोड़ा. परिणाम स्वरूप अनेक फल मिले हैं. अब पहले जितनी देर सोनेकी आवश्यकता नहीं महसूस होती. कम समयमें ही नींद पूरी हो जाती है. मेरे पतिका देहांत होने के कारण मेरे सिर पर परिवारका और विशाल अचल संपत्तिके संचालन का बोझ आ पड़ा है परन्तु विपश्यना की वजहसे जरा भी थकान नहीं महसूस होती. विपश्यनाके कारण मेरा शरीर अधिक निरोग रहने लगा है. मन में धीरज और सहिष्णुता बढ़ी है."

• • •

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

देख धरम कै नाम पर, लोग बुहावै खून ।
समझ न पावै धरम तो, कुदरत को कानून ॥१॥
तन्नै प्यारी जिन्दगी, लागै प्यारा प्राण ।
औरां की भी जिन्दगी, अपणी सी ही जाण ॥२॥
तेरै दीन ईमान को, के यो ही मजमून ?
देख बहायो भूमि पर, बेकसूर को खून ॥३॥
बो ना साच्चो धरम है, ना साच्चो ईमान ।
जीं सूं मन रै प्यार नै, खो बैठै ईसान ॥४॥
हुयो धरम कै नाम पर, किसो क नर संहार ।
धिक धिक धिक ई धरम नै, लाख बार धिक्कार ॥५॥
निरभयता निरबैरता, साच्चो धरम अकाल ।
जो जागै सतधरम मँह, बो ही हुवै निहाल ॥६॥

दोहे धर्म के

सम्प्रदाय का भूत बन, चढ़े शीश शैतान ।
निरपराध का खून कर, बन बैठे हैवान ॥१॥
होश गँवा कर क्या मिला ? भूला राम रहीम ।
नन्हे बालक बिलखते, हुए अनाथ यतीम ॥२॥
कितनी माताएँ विकल, खोये कितने लाल ।
उनकी करुण पुकार सुन, अब तो होश सँभाल ॥३॥
यह संतों की भूमि है, सद्गुरुओं का देश ।
इसके कण कण में भरा, करुणा का संदेश ॥४॥
कैसा तेरा ईश्वर, कैसा रब्ब खुदाय ?
तू जिसके ही नाम पर, खून बहाता जाय ॥५॥
धरम जगे फिर मनुज में, बने मनुज भगवान ।
सेवा करुणा प्यार से, धन्य होय इन्सान ॥६॥

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/–

विपश्यना" 5/86
पो. र. नं. Ns (M) 16/86

Licence No. NS 18
Licensed to post Without pre-payment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)

To